प्रकाशक—
गाँधी-हिन्दी-पुस्तक भंडार
प्रयाग

प्रथमावृत्ति—एक हज़ार
मूल्य—१।)

मुद्रक—
सूरजप्रसाद खन्ना
हिन्दी-साहित्य प्रेस प्रयाग।

श्रीमती महादेवी वर्मा वी० ए०

परिचय

आजकल जिसे छाया-वाद कहते हैं, इस ग्रंथ की अधिकांश कवितायें उसी ढंग की हैं। छायावाद किसे कहते हैं? उसे छायावाद कहना चाहिये अथवा रहस्य-वाद यह वाद-ग्रस्त-विषय है। स्वयं छायावादी-कवि अब तक इस बात को निश्चित नहीं कर सके, कि वे अपनी नूतन-प्रणाली की कविताओं को छाया-वाद कहें अथवा रहस्य-वाद। इस प्रकार की कविताओं की परिधि इतनी विस्तृत हो गई है कि उन सब का अन्तर्भाव छाया-वाद अथवा रहस्य-वाद में नहीं हो सकता। अतएव कोई कोई उसको हृदय-वाद कहने लगे है, किन्तु यह संज्ञा अति-व्याप्ति दोष से दूषित है। मिसटिसिज़्म (Mysticism) यथार्थ-अनुवाद रहस्य-वाद ही हो सकता है, छाया-वाद शब्द में उसकी छाया दिखला पडती है, मूर्ति नहीं। रहस्य-वाद में अस्पष्टता, अपरिच्छिन्नता और सर्व साधारण की दुर्बोधता झलकती है, वह चमत्कारक होकर अचिन्तनीय भी है, छाया-वाद मे यह बात नहीं पाई जाती। वह स्निग्ध, मनोरम, और प्राञ्जल है, साथ ही उतना अचिन्तनीय नहीं, शायद इसीलिये उस पर अधिक-तर-सहृदयों की स्वीकृति की मुहर लग गई है। छाया-

वाद शब्द प्रचलित हो गया है, और अपने उद्देश की पूर्ति भी कर रहा है। ऐसी अवस्था मे अब इस विषय मे अधिक इदं कुतः की आवश्यकता नही जान पडती। किसी विषय के लिये जब कोई शब्द रूढि हो जाता है, तो एक प्रकार से वह अपेक्षित-आवश्यकता के लिये स्वीकृत समझा जाता है, फिर वादविवाद क्या? संसार मे अधिकांश नाम करण इसी प्रकार हुआ है।

हिन्दी-कविता-क्षेत्र मे आजकल छाया-वाद की कवितायें इस अधिकता से हो रही है, और युवक-दल उसकी ओर इतना आकृष्ट है कि वर्त्तमान समय को हम छाया-वाद-युग कह सकते है। फिर भी छाया-वाद की कवितायें अभी आदिम-अवस्था मे हैं, उद्गम से बाहर निकलती हुई, अधिकांश-सरिताओं के समान उनमे वेग है, प्रवाह है, उल्लास और कल्लोल है, किन्तु वांछित धीरता नही, वह स्थान स्थान पर तरंगाकुल और आविल भी है। ऐसा होना स्वाभाविक है, काल पाकर उनको समधरातल भी मिलेगा, और उस समय वे मंजु-मंथर-गामिनी और यथेच्छ-स्वच्छतामयी एव सरसा होंगी। कवि-कार्य सुगम नही, वह अगम्य है, वह सर्वथा निर्दोष नही हो सकता। जब महाकवियों मे भी भ्रम, प्रमाद, और त्रुटियाँ पाई जाती है, तो उस पर बात बात में उँगली उठाना क्या उचित होगा, जिसने अभी कविता क्षेत्र मे

पदार्पण किया है। प्रेम से दोष प्रक्षालन के लिये किसी को सतर्क करना अवांछनीय नहीं, किन्तु ऐसे अवसरों पर मच्छिका-प्रवृत्ति से काम लेना संगत नहीं। थोड़े समय मे भी कतिपय-छायावादी कवियो ने हिन्दी-संसार में कीर्ति अर्जन की है, और उनमें पर्याप्त-भावुकता का विकास देखा गया है। उन्होंने अपने गहन-पथ को सरल बनाया है, और कोमल-कान्त-पदावली पर अधिकार कर के वडी भावमयी कवितायें की है। उन्ही मे से एक श्रीमती महादेवी वर्मा कवयित्री भी है।

यह ग्रंथ उनका आदिम-ग्रंथ है, फिर भी इसमे उनकी प्रतिभा का विलक्षण विकास देखा जाता है। ग्रंथ सर्वथा निर्दोष नहीं, किन्तु इसमे अनेक इतनी सजीव और सुन्दर-पंक्तियां है, कि उनके मधुर प्रवाह मे उधर दृष्टि जाती ही नही। प्रफुल्ल-पाटल प्रसून मे कांटे होते है, हों, किन्तु उसकी प्रफुल्लता और मनोरंजकता ही मुग्धकारिता की सम्पत्ति है। ऐसा कहकर मैं नियमन की अवहेलना नही करता हूँ—सहृदयता का नेत्रोन्मीलन कर रहा हूँ। कहा जा सकता है, एक स्त्री का उत्साह वर्द्धन करने के लिए बातें कही गईं। मै कहूँगा यह विचार समीचीन नहीं, ऐसा कहना स्त्री जाति की तोमुखी प्रतिभा को लाञ्छित करना है। वास्तव मे बात यह है कि ग्रंथ की

भावुकता और मार्मिकता उल्लेखनीय है, उसका कोमल शब्द विन्यास भी अल्प आकर्षक नही।

मैं श्रीमती महादेवी वर्मा का हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में सादर अभिनन्दन करता हूँ, और उनसे यह विनय भी, कि उनकी हृत्तंत्री के अपूर्व झङ्कार मे भारतमाता के की वर्त्तमान ध्वनि भी श्रुत होनी चाहिये, इससे उनकी कीर्ति उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होगी। माता की व्यथाओं के अनुभव करने की मार्मिकता मातृत्व पद की अधिकारिणी को ही यथातथ्य हो सकती है।

काशीधाम
२८-४-३०

हरिऔध

सूची

पृष्ठ

पृष्ठ

ाहिार

विसर्जन

निशा की, धो देता राकेश
चांदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
'बता दो मधुमदिरा का मोल';

झटक जाता था पागल वात
धूल में तुहिनकणों के हार,
सिखाने जीवन का सङ्गीत
तभी तुम आये थे इस पार।

समर्पण

बिछाती थी सपनो के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर;

भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हे तब आता था करुणेश!
उन्हीं मेरी भूलो पर प्यार!

गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण।
नही पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।

+ + +

नही अब गाया जाता देव!
थकी अँगुली, हैं ढीले तार
विश्ववीणा मे अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झङ्कार।

१९२८ मई



रजतकरो की मृदुल तूलिका-
से ले तुहिनविन्दु सुकुमार,
कलियो पर जब आँक रहा था
करुण कथा अपनी संसार;

तरल हृदय की उच्छ्वासें जब
भोले मेघ लुटा जाते,
अन्धकार दिन की चोटो पर
अञ्जन बरसाने आते।

मधु की बूँदों मे छलके जब
तारकलोकों के शुचि फूल,
विधुर हृदय की मृदु कम्पन सा
सिहर उठा वह नीरव कूल;

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।

चल चितवन के दूत सुना
उनके, पलमे रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों मे
मचा गए क्या क्या उत्पात!

जीवन है उन्माद तभी से
निधियां प्राणों के छाले,
मांग रहा है विपुल वेदना-
के मन प्याले पर प्याले!

मिलन

पीड़ा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहां
नीरव रोदन था पहरेदार।

+ + +

कैसे कहती हो सपना है
अलि! उस मूकमिलन की बात?
भरे हुए अबतक फूलों मे
मेरे आँसू उनके हास।

१९२९ अ

अतिथि से

वनबाला के गीतो सा
निर्जन में बिखरा है मधुमास,
इन कुञ्जो मे खोज रहा है
सूना कोना मन्द बतास।

नीरव नभ के नयनों पर
हिलती है रजनी की अलकें,
जाने किसका पंथ देखती
बिछकर फूलो की पलके!

मधुर चाँदनी धो जाती है
खाली कलियो के प्याले,
बिखरे से है तार आज
मेरी वीणा के मतवाले,

पहली सी झङ्कार नही है
और नही वह मादक राग,
अतिथि! किन्तु सुनते जाओ
टूटे तारो का करुण विहाग!

१८२६ मई

मिटने खेल

मैं अनन्त पथ में लि ती जो
सस्मित सपनों की बातें,
उनको कभी न धो पायेंगी
अपने आँसू से रातें !

उड़ उड़ कर जो धूल करेगी
मेघों का नभ में अभिषेक,
अमिट रहेगी उसके अञ्चल—
में मेरी पीड़ा की रे ।

मिटने का खेल

तारों में प्रतिबिम्बित हो
मुस्कायेंगी अनन्त आँखें,
होकर सीमाहीन, शून्य में
मंडरायेंगी अभिलाषें।

वीणा होगी मूक बजाने—
वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृति के चरणों पर आकर
लौटेंगे सौ सौ निर्वाण!

जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल!

१९२९ मई

संसार

निश्वासों की नीड़, निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार,

तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख लिख जाता है 'कितना अस्थिर है संसार' !

संसार

हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अञ्चल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचलीं पड़तीं किरणें भोली,

तब कलियें चुपचाप उठाकर पल्लव के घूंघट सुकुमार,
छलकी पलकों से कहती हैं 'कितना मादक है संसार!'

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल?'

'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौंरों की गुञ्जार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार!'

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली, नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक वार,

हँसकर तव उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ़ पारावार,
'बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार !'

स्वप्नलोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,

आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झङ्कार,
गा जाती है करुण स्वरों में 'कितना पागल है संसार !'

१६२६ मई

अधिकार

वे मुस्काते फूल, नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं—
जिनको भाता है बुझ जाना;

वे नीलम के मेघ, नहीं—
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं—
जिसने देखी जाने की राह।

वे सूने से नयन, नहीं—
जिनमें बनते आंसू-मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं
जिसमे बेसुध पीड़ा रोती ;

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नही, नहीं-
जिसने जाना मिटने का स्वाद !

\+ + +

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

१९२९ मई

कौन ?

ढुलकते आँसू सा सुकुमार
विखरते सपनों सा अज्ञात
चुरा कर ऊषा का सिन्दूर
मुस्कराया जब मेरा प्रात,

छिपा कर लाली में चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन ?

+ + +

हँस उठे छूकर टूटे तार
प्राण मे मँडराया उन्माद,
व्यथा मीठी ले प्यारी प्यास
सो गया वेसुध अन्तर्नाद,

घूँट में थी साक़ी की साध
सुना फिर फिर जाता है कौन ?

१९२९ जुलाई

मेरा राज्य

रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारो की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली;

शशि को छूने मचली सी
लहरों का कर कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिङ्गन।

अपनी जब करुण कहानी
कह जाता है मलयानिल,
आँसू से भर जाता जब—
सूखा अवनी का अञ्चल;

पल्लव के डाल हिंडोले
सौरभ सोता कलियों में,
छिप छिप किरणें आतीं जब
मधु से सींची गलियों में।

आँखों मे रात बिता जब
विधु ने पीला मुख फेरा,
आया फिर चित्र बनाने
प्राची मे प्रात चितेरा,

कन कन मे जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली,
मैं निर्धन तब आई ले
सपनो से भर कर डाली।

जिन चरणों की नखज्योती-
ने हीरकजाल लजाये,
उन पर मैंने धुँधले से
आँसू दो चार चढ़ाये !

इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का !!

उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते !
आँखों के कोष हुए हैं
मोती बरसा कर रीते ;

अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जला कर
करती रहती दीवाली ।

मेरा राज्य

मेरी आहें सोती हैं
इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटों में !!

चिन्ता क्या है, हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा :
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा !

१९२८ जुलाई

चाह

चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार !

कलियों के उच्छ्वास शून्य में तानें एक वितान,
तुहिनकणों पर मृदु कम्पन से सेज बिछादें गान ;

जहाँ सपने हों पहरेदार,
अनोखा एक नया संसार !

करते हो आलोक जहाँ बुझ बुझ कर कोमल प्राण,
जलने मे विश्राम जहां मिटने मे हो निर्वाण ;

वेदना मधुमदिरा की धार,
अनोखा एक नया संसार !

मिल जावे उस पार क्षितिज के सीमा सीमाहीन,
गर्वीले नक्षत्र धरा पर लोट हो कर दीन ।

उदधि हो नभ का शयनागार,
अनोखा एक नया संसार !

जीवन की अनुभूति तुला पर अरमानो से तोल,
यह अबोध मन मूक व्यथा से ले पागलपन मोल ।

करे दृग आंसू का व्यापार,
अनोखा एक नया संसार !

१९२९ जुलाई

सूनापन

सिल जाता काले अंजन मे
सन्ध्या की आँखों का राग,
जब तारे फैला फैला कर
सूने मे गिनता आकाश ;

उसकी खोई सी चाहो मे
घुट कर मूक हुई आहो मे !

झूम झूम कर मतवाली सी
पिये वेदनाओं का प्याला,
प्राणों में रूँधी निश्वासें
आती ले मेघों की माला;

उसके रह रह कर रोने मे
मिल कर विद्युत के खोने में।

धीरे से सूने आँगन में
फैला जब जाती हैं रातें,
भर भरके ठंढी साँसों में
मोती से आँसू की पातें;

उनकी सिहराई कम्पन मे
किरणों के प्यासे चुम्बन मे।

जाने किस बीते जीवन का
संदेशा दे मंद समीरण,
छू देता अपने पंखों से
मुर्झाये फूलों के लोचन;

उनके फीके मुस्काने में
फिर अलसाकर गिर जाने मे !

आँखो की नीरव भिक्षा में
आँसू के मिटते दागो में,
ओठो की हँसती पीड़ा में
आहो के बिखरे त्यागों मे ;

कन कन में बिखरा है निर्मम !
मेरे मानस का सूनापन !

१९२९ सितम्बर

सन्देह

बहती जिस नक्षत्रलोक मे
निद्रा के श्वासो से वात,
रजतरश्मियो के तारो पर
बेसुध सी गाती थी रात।

अलसाती थी लहरे पी कर
मधुमिश्रित तारो की ओस,
भरती थी सपने गिन गिन कर
मूक व्यथायें अपने कोष।

दूर उन्हीं नीलमकूलों पर
पीड़ा का ले झीना तार,
उच्छ्वासों की गूँथी माला
मैं ने पाई थी उपहार।

यह विस्मृति है या सपना वह
या जीवन विनिमय की भूल !
काले क्यों पड़ते जाते हैं
माला के सोने से फूल ?

१९२९ जनवरी

निर्वाण

घायल मन लेकर सोजाती
    मेघो में तारो की प्यास,
यह् जीवन का ज्वार शून्य का
    करता है बढ़ कर उपहास।

चल चपला के दीप जलाकर
    किसे ढूंढता अन्धाकार ?
अपने आँसू आज पिलादो
    कहता किन से पारावार ?

झुक झुक झूम झूम कर लहरें
भरतीं बूँदों के मोती,
यह मेरे सपनों की छाया
झोंकों में फिरती रोती;

आज किसी के मसले तारों
की वह दूरागत झङ्कार,
मुझे बुलाती है सहमी सी
झञ्झा के परदों के पार।

इस असीम तम में मिलकर
मुझको पलभर सो जाने दो,
बुझ जाने दो देव! आज
मेरा दीपक बुझ जाने दो!

१६२६ मई

समाधि के दीप से

जिन नयनों की विपुल नीलिमा—
में मिलता नभ का आभास,
जिनका सीमित उर करता था
सीमाहीनों का उपहास.
जिस मानस में डूब गए—
कितनी करुणा कितने तूफ़ान !
लोट रहा है आज धूल में
उन मतवालों का अभिमान।

जिन अधरों की मन्द हँसी थी
नव अरुणोदय का उपमान,
किया दैव ने जिन प्राणों का
केवल सुषमा से निर्माण;
तुहिनबिन्दु सा, मञ्जु सुमन सा
जिन का जीवन था सुकुमार,
दिया उन्हें भी निठर काल ने
पाषाणों का शयनागार।

\+ + +

कन कन में बिखरी सोती है
अब उनके जीवन की प्यास,
जगा न दे हे दीप! कहीं—
उसको तेरा यह क्षीण प्रकाश!

अभिमान

छाया की आँखमिचौनी
मेघो का मतवालापन,
रजनी के श्यामकपोलो
पर ढरकीले श्रम के कन ,

फूलो की मीठी चितवन
नभ की ये दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के
वे किरणो की फुलझड़ियाँ ।

विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी,
जिस मे उजियारी रातें
लुटतीं घुलती मिसरी सी ;

भिक्षुक से फिर जाओगे
जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे
इन प्राणों का मंहगापन !

क्यों आज दिये देते हो
अपना मरकत सिंहासन ?
यह है मेरे मरु मानस-
का चमकीला सिकताकन।

आलोक यहां लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जलाकरता है
पर मेरा दीपक सा मन !

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दुःख
आँसू बन कर खोता है!

जग हँसकर कह देता है
मेरी आँखें हैं निर्धन,
इनके बरसाये मोती
क्या वह अबतक पाया गिन?

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा?

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन?
उन में अनन्त करुणा है
इस में असीम सूनापन!

१९२९ जनवरी

उस पार

घोर तम छाया चारो ओर
        घटायें घिर आईं घन घोर;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
        हिले जाते हैं पर्वतमूल;
गरजता सागर बारम्बार,
                कौन पहुँचा देगा उस पार?

तरङ्गें उठीं पर्वताकार
    भयंकर करतीं हाहाकार;
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
    तरी का करते हैं उपहास,
हाथ से गई छूट पतवार,
        कौन पहुँचा देगा उस पार?

ग्रास करने नौका, स्वच्छन्द
    घूमते फिरते जलचर वृन्द,
देख कर काला सिन्धु अनन्त
    हो गया हा साहस का अन्त!
तरङ्गें हैं उत्ताल अपार,
        कौन पहुँचा देगा उस पार?

बुझ गया वह नक्षत्र प्रकाश
    चमकती जिस में मेरी आश;
रैन बोली सज कृष्ण दुकूल
    विसर्जन करो मनोरथ फूल,
न लाये कोई कर्णाधार,
        कौन पहुँचा देगा उस पार?

उस पार

सुना था मैं ने इस के पार
बसा है सोने का संसार,
जहाँ के हंसते विहग ललाम
मृत्यु छाया का सुनकर नाम !
धरा का है अनन्त श्रृंगार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान ;
सुनाता नभ अनन्त झङ्कार
बजा देता है सारे तार ;
भरा जिसमें असीम सा प्यार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

पुष्प में है अनन्त मुस्कान
त्याग का है मारुत में गान ;
सभी में है स्वर्गीय विकाश
वही कोमल कमनीय प्रकाश ;
दूर कितना है वह संसार !
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

× × × ×

सुनायी किसने पल मे आन
कान मे मधुमय मोहक तान ?
'तरी को ले जाओ मझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार।'

१९२४ जुलाई

मेरी साध

थकी पलकें सपनों पर डाल
व्यथा में सोता हो आकाश,
छलकता जाता हो चुपचाप
बादलों के उर से अवसाद ;

वेदना की वीणा पर देव
शून्य गाता हो नीरव राग,
मिलाकर निश्वासों के तार
गूँथती हो जब तारे रात ;

उन्हीं तारक फूलों में देव
गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण !

किसी जीवन की मीठी याद
लुटाता हो मतवाला प्रात,
कली अलसाई आंखें खोल
सुनाती हो सपने की बात ;

खोजते हो खोया उन्माद
मन्द मलयानिल के उच्छ्वास,
मांगती हो आंसू के बिन्दु
मूक फूलों की सोती प्यास ;
पिला देना धीरे से देव
उसे मेरे आंसू सुकुमार-
सजीले से आंसू के हार !

मचलते उद्‌गारों से खेल
उलझते हों किरणों के जाल,
किसी की छूकर ठंढी सांस
सिहर जाती हों लहरें बाल ;

चकित सा सूने में संसार
गिन रहा हो प्राणों के दाग़,

सुनहली प्याली में दिनमान
किसी का पीता हो अनुराग ;
ढाल देना उसमें अनजान
देव मेरा चिर संचित राग—
अरे यह मेरा मादक राग !

मत्त हो स्वप्निल हाला ढाल
महानिद्रा में पारावार,
उसी की धड़कन में तूफ़ान
मिलाता हो अपनी झंकार ;

झकोरों से मोहक संदेश
कह रहा हो छाया का मौन,
सुप्त आहों का दीन विषाद
पूछता हो आता है कौन ?
बहा देना आकर चुपचाप
तभी यह मेरा जीवन फूल—
सुभग मेरा मुरझाया फूल !

१९२९ जनवरी

स्वप्न

इन हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला
पीड़ा का सार मिला कर
प्राणों का आसव ढाला।
मलयानिल के झोंकों में
अपना उपहार लपेटे,
मैं सूने तट पर आई
बिखरे उद्गार समेटे।
काले रजनी अञ्चल में
लिपटी लहरें सोती थीं,
मधु मानस का बरसाती
वारिद्माला रोती थी।
नीरव तम की छाया में
छिप सौरभ की अलकों में,

गायक वह गान तुम्हारा
आ मंडराया पलकों में!
हाला सा, हालाहल सी,
बह गई अचानक लहरी,
डूबा जग भूला तन मन
आँखें शिथिलाईं सिहरीं!
बेसुध से प्राण हुए जब
छूकर उन झङ्कारों को,
उड़ते थे, अकुलाते थे
चुम्बन करने तारों को।
उस मतवाली वीणा से
जब मानस था मतवाला,
वे मूक हुईं झङ्कारें
वह चूर हो गया प्याला।
होगईं कहां अन्तर्हित
सपने ले कर वे रातें?
जिनका पथ आलोकित कर
बुझने जाती है आंखें!

१९२८ मई

आना

जो मुखरित कर जातीं थी
मेरा नीरव आवाहन,
मैं ने दुर्बल प्राणों की
वह आज सुलादी कम्पन।

थिरकन अपनी पुतली की
भारी पलको मे बाँधी,
निस्पन्द पड़ी है आंखे
बरसाने वाली आँधी ।

जिसके निष्फल जीवन ने
जल जल कर देखीं राहें,
निर्वाण हुआ है देखो
वह दीप लुटा कर चाहें!

निर्घोष घटाओं में छिप
तड़पन चपला की सोती,
झंझा के उन्मादों में
घुलती जाती बेहोशी।

करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो!
तुम पल भर को बुझ जाना!

३ १९२९ फरवरी

निश्चय

कितनी रातों की मैंने
नहलाई है अंधियारी,
धोडाली है संध्या के
पीले सेंदुर से लाली ;

नभ के धुंधले कर डाले
अपलक चमकीले तारे,
इन आहों पर तैरा कर
रजनीकर पार उतारे ।

बह गई क्षितिज की रेखा
मिलती है कही न हेरे,
भूला सा मत्त समीरण
पागल सा देता फेरे।

अपने उर पर सोने से
लिखकर कुछ प्रेम कहानी,
सहते है रोते बादल
तूफानो की मनमानी।

इन बूंदो के दर्पण मे
करुणा क्या झांक रही है?
क्या सागर की धड़कन मे
लहरे बढ़ आँक रही हैं?

पीड़ा मेरे मानस से
भीगे पट सी लिपटी है,
डूबी सी यह निश्वासें
ओठों में आ सिमटी हैं।

निश्चय

मुझ में विक्षिप्त झकोरे।
उन्माद मिला दो अपना,
हां नाच उठे जिसको छू
मेरा नन्हा सा सपना !!

पीड़ा टकरा कर फूटे
घूमे विश्राम विकल सा,
तम बढ़े मिटा डाले सब
जीवन कांपे चलदल सा।

फिर भी इस पार न आवे
जो मेरा नाविक निर्मम,
सपनो से बांध डुबाना
मेरा छोटा सा जीवन !

१६२८ सितम्बर

अनुरोध

इस मे अतीत मुरझाता
अपने आंसू की लड़ियां,
इस में असीम गिनता है
वे मधुमासों की घड़ियां;
इस अञ्चल में चित्रित है
भूली जीवन की हारैं,
उनकी छलनामय छाया
मेरी अनन्त मनुहारैं।

वे निर्धन के दीपक सी,
बुझती सी मूक व्यथायें,
प्राणों की चित्रपटी मे
आँकी सी करुण कथायें,
मेरे अनन्त जीवन का
वह मतवाला बालकपन,
इस मे थक कर सोता है
ले कर अपना चञ्चल मन।

\+ \+ \+

ठहरो बेसुध पीड़ा को
मेरी न कहीं छू लेना!
जब तक वे आ न जगावें
बस सोती रहने देना ॥

१६२६ मई

तब

शून्य से टकरा कर सुकुमार
करेगी पीड़ा हाहाकार,
बिखर कर कन कन में हो व्याप्त
मेघ बन छा लेगी संसार।

पिघलते होंगे यह नक्षत्र
अनिल की जब छूकर निश्वास,
निशा के आंसू में प्रतिबिम्ब
देख निज कांपेगा आकाश!

तब

विश्व होगा पीड़ा का राग
निराशा जब होगी वरदान,
साथ लेकर मुर्झाई साध
बिखर जायेंगे प्यासे प्राण।

उदधि नभ को कर लेगा प्यार
मिलेंगे सीमा और अनन्त,
उपासक ही होगा आराध्य
एक होंगे पतझार वसन्त।

बुझेगा जलकर आशादीप
सुला देगा आकर उन्माद,
कहां कब देखा था वह देश?
अतल में डूबेगी यह याद!

प्रतीक्षा मे मतवाले नैन
उड़ेंगे जब सौरभ के साथ,
हृदय होगा नीरव आह्वान
मिलोगे क्या तब हे अज्ञात?

१९२८ जनवरी

मुर्झाया फूल

था कली के रूप शैशव-
　　　　मे अहो सूखे सुमन।
हास्य करता था, खिलाती
　　　　अंक में तुझको पवन।

खिल गया जब पूर्ण तू-
　　　　मञ्जुल सुकोमल पुष्पवर!
लुब्ध मधु के हेतु मंडराते
　　　　लगे आने भ्रमर।

स्निग्ध किरणें चन्द्र की—
तुझको हँसाती थीं सदा,
रात तुझ पर वारती थी
मोतियों की सम्पदा।

लोरियां गाकर मधुप
निद्रा विवश करते तुझे,
यत्न माली का रहा—
आनन्द से भरता तुझे।

कर रहा अठखेलियां—
इतरा सदा उद्यान मे,
अन्त का यह दृश्य आया—
था कभी क्या ध्यान मे ?

सो रहा अब तू धरा पर—
शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नही
मुख मंजु मुरझाया हुआ।

मुर्झाया फूल

आज तुझको देखकर
चाहक भ्रमर आता नहीं,
लाल अपना राग तुझ पर
प्रात बरसाता नहीं।

जिस पवन ने अङ्क में—
ले प्यार था तुझ को किया,
तीव्र झोके से सुला—
उसने तुझे भूपर दिया।

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिए दानी सुमन ?

मत व्यथित हो फूल! किस को
सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहां करतार ने।

मुर्झाया फूल

विश्व में हे फूल ! तू–
सब के हृदय भाता रहा !
दान कर सर्वस्व फिर भी–
हाय हर्षाता रहा ।

जव न तेरी ही दशा पर
दुख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन !
हम से मनुज निःसार को ?

१९२२ जनवरी

कहाँ ?

घोर घन की अवगुण्ठन डाल
करुण सा क्या गाती है रात ?
दूर छूटा वह परिचित कूल
कह रहा है यह झञ्झावात ;
लिए जाते तरिणी किस ओर
अरे मेरे नाविक नादान !

हो गया विस्मृत मानवलोक
हुए जाते हैं बेसुध प्राण,
किन्तु तेरा नीरव संगीत
निरन्तर करता है अह्वान ;
यही क्या है अनन्त की राह
अरे मेरे नाविक नादान ?

१९२९ मार्च

उत्तर

इस एक बूँद आँसू में
चाहे साम्राज्य बहा दो,
वरदानों की वर्षा से
यह सूनापन बिखरा दो;
इच्छाओं की कम्पन से
सोता एकान्त जगा दो,
आशा की मुस्काहट पर
मेरा नैराश्य लुटा दो।

चाहे जर्जर तारों में
अपना मानस उलझा दो,
इन पलकों के प्यालों मे
सुख का आसव छलका दो ;
मेरे बिखरे प्राणों मे
सारी करुणा ढुलका दो,
मेरी छोटी सीमा मे
अपना अस्तित्व मिटा दो !
पर शेष नही होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा मे ढूँढा
तुम मे ढूँढूँगी पीड़ा !

१९२९ फरवरी

फिर एकबार

मैं कम्पन हूँ तू करुण राग
मैं आंसू हूँ तू है विषाद,
मैं मदिरा तू उसका ख़ुमार
मैं छाया तू उसका अधार;
मेरे भारत मेरे विशाल
मुझको कह लेने दो उदार!
फिर एकबार बस एकबार!

जिनसे कहती बीती बहार
'मतवालो जीवन है असार'।
जिन झंकारों के मधुर गान
ले गया छीन कोई अजान,
उन तारों पर बनकर विहाग
मंडरा लेने दो हे उदार।
फिर एकबार बस एकबार!

कहता है जिनका व्यथित मौन
'हम सा निष्फल है आज कौन'?
निर्धन के धन सी हास रेख
जिनकी जग ने पाई न देख,
उन सूखे ओठो के विषाद-
मे मिल जाने दो हे उदार।
फिर एकबार बस एकबार!

जिन आँखो का नीरव अतीत
कहता 'मिटना है मधुर जीत',
जिन पलको में तारे अमोल
आंसू से करते हैं किलोल;

उस चिन्तित चितवनमे विहास
बन जाने दो मुझको उदार !
फिर एकबार बस एकबार !

फूलो सी हो पलमे मलीन
तारो सी सूने मे विलीन,
ढुलती बूँदो से ले विराग
दीपक से जलने का सुहाग,
अन्तरतम की छाया समेट
मैं तुझमे मिट जाऊं उदार !
फिर एकबार बस एकबार !

१९२९ मई

उनका प्यार

समीरण के पङ्खो मे गूँथ
लुटा डाला सौरभ का भार,
दिया, ढुलका मानस मकरन्द
मधुर अपनी स्मृति का उपहार;
अचानक हो क्यो छिन्न मलीन
लिया फूलो का जीवन छीन ?

दैव सा निष्ठुर, दुःख सा मूक
स्वप्न सा, छाया सा अनजान,
वेदना सा, तम सा गम्भीर
कहाँ से आया वह अह्वान ?
हमारी हँसती चाह समेट
लेगया कौन तुम्हे किस देश ?

छोड़ कर जो वीणा के तार
शून्य मे लय हो जाता राग,
विश्व छा लेती छोटी आह
प्राण का वन्दीखाना त्याग;
नहीं जिसका सीमा में अन्त
मिली है क्या वह साध अनन्त ?

ज्योति बुझ गई रह गया दीप
रही झङ्कार गया वह गान,
विरह है या अखण्ड संयोग
शाप है या यह है वरदान ?
पूछता आकर हाहाकार
कहाँ हो ? जीवन के उस पार ?

मधुर जीवन था मुग्ध वसन्त
विधुर बन कर आती क्यो याद ?
'सुधा' वसुधा मे लाया एक
प्राण मे लाती एक विषाद;
बुझाकर छोटा दीपालोक
हुई क्या हो असीम में लोप ?

उनका प्यार

हुई सोने की प्रतिमा क्षार
साधनायें बैठी हैं मौन,
हमारा मानसकुञ्ज उजा
दे गया नीरव रोदन कौन ?
नही क्या अब होगा स्वीकार
पिघलती आँखो का उपहार ?

बिखरते स्वप्नों की तस्वीर
अधूरा प्राणो का सन्देश,
हृदय की लेकर प्यासी साध
बसाया है अब कौन विदेश ?
रो रहा है चरणो के पास
चाह जिनकी थी उनका प्यार ।

१९२८ मई

आँसू

यहीं है वह विस्मृत सङ्गीत
खोगई है जिसकी झङ्कार,
यहीं सोते हैं वे उच्छ्वास
जहां रोता बीता संसार;
यहीं है प्राणों का इतिहास
यहीं बिखरे वसन्त का शेष,
नहीं जो अब आयेगा लौट
यही उसकी अक्षय संदेश।

\+ + + +

समाहित है अनन्त अह्वान
यहीं मेरे जीवन का सार,
अतिथि! क्या ले जाओगे साथ
मुग्ध मेरे आँसू दो चार?

१६२८ अप्रेल

मेरा एकान्त

कामना की पलकों में झूल
नवल फूलों के छूकर अङ्ग,
लिए मतवाला सौरभ साथ
लजीली लतिकायें भर अङ्क,
यहां मत आओ मत्त समीर!
सो रहा है मेरा एकान्त!

लालसा की मदिरा में चूर
क्षणिक भङ्गुर यौवन पर भूल,
साथ लेकर भौंरों की भीर
विलासी हे उपवन के फूल !
बनाओ इसे न लीलाभूमि
तपोवन है मेरा एकान्त !

निराली कलकल में अभिराम
मिलाकर मोहक मादक गान,
छलकती लहरों में उद्दाम
छिपा अपना अस्फुट आह्वान,
न कर हे निर्झर! भङ्ग समाधि
साधना है मेरा एकान्त !

विजन वन में बिखरा कर राग
जगा सोते प्राणों की प्यास,
ढालकर सौरभ में उन्माद
नशीली फैला कर निश्वास,
लुभाओ इसे न मुग्ध वसन्त!
विरागी है मेरा एकान्त !

गुलाबी चल चितवन मे बोर
सजीले सपनों की मुस्कान,
झिलमिलाती अवगुण्ठन डाल
सुनाकर परिचित भूली तान,
जला मत अपना दीपक आश !
न खो जाये मेरा एकान्त !

१९२७ अगस्त

उनसे

निराशा के झोंकों ने देव !
भरी मानसकुंजों में धूल,
वेदनाओं के झञ्झावात
गए बिखरा यह जीवनफूल ।

बरसते थे मोती अवदात
जहां तारकलोकों से टूट,
जहाँ छिप जाते थे मधुमास
निशा के अभिसारों को लूट ।

जला जिसमें आशा के दीप
तुम्हारी करती थी मनुहार,
हुआ वह उच्छ्वासों का नीड़
रुदन का सूना स्वप्नागार।

\+ + +

हृदय पर अङ्कित कर सुकुमार
तुम्हारी अवहेला की चोट,
बिछाती हूँ पथ में करुणेश।
छलकती आँखें हँसते ओठ।

१९२९ मई

मेरा जीवन

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास
देव वीणा का टूटा तार,
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार
रत्न वह प्राणों का शृंगार .
नई आशाओं का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन !

क्षीरनिधि की थी सुप्त तरङ्ग,
सरलता का न्यारा निर्झर,
हमारा वह सोने का स्वप्न
प्रेम की चमकीली आकर;
शुभ्र जो था निर्मेघ गगन
सुभग मेरा संगी जीवन!

अलक्षित आ किसने चुपचाप
सुना अपनी सम्मोहन तान,
दिखाकर माया का साम्राज्य
बना डाला इसको अज्ञान?
मोह मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन!

तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आशा,
नचाता मायावी संसार
लुभा जाता सपनों का हास;
मानते विष को संजीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन!

न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज :
असम्भव है चिर सम्मेलन,
न भूलो क्षणभगुर जीवन !

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द .
यहां किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन !

छलकती जाती है दिन रैन
लवालव तेरी प्याली मीत,
ज्योति होती जाती है क्षीण
मौन होता जाता संगीत ,
करो नयनों का उन्मीलन
क्षणिक हे मतवाले जीवन !

शून्य से बन जाओ गम्भीर
त्याग की हो जाओ झङ्कार,
इसी छोटे प्याले में आज
डुबा डालो सारा संसार;
लजा जायें यह मुग्ध सुमन
बनो ऐसे छोटे जीवन!

सखे! यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा तेरा सङ्ग,
यहां मिलता कांटों में बन्धु!
सजीला सा फूलों का रङ्ग;
तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन!

१९२७ फरवरी

सूना संदेश

हुए है कितने अन्तर्ध्यान
छिन्न होकर भावो के हार,
घिरे घन से कितने उच्छ्वास
उड़े है नभ मे होकर क्षार !

शून्य को छूकर आये लौट
मूक होकर मेरे निश्वास,
बिखरती है पीड़ा के साथ
चूर होकर मेरी अभिलाष !

छा रही है बनकर उन्माद
कभी जो थी अस्फुट झंकार,
कांपता सा आंसू का विन्दु
बना जाता है पारावार।

खोज जिसकी वह है अज्ञात
शून्य वह है भेजा जिस देश,
लिए जाओ अनन्त के पार
प्राण वाहक सूना संदेश !

१९२८ मार्च

प्रतीक्षा

जिस दिन नीरव तारों से,
बोलीं किरणों की अलकें,
'सो जाओ अलसाई हैं
सुकुमार तुम्हारी पलकें!'

जब इन फूलों पर मधु की
पहली बूंदें बिखरी थीं,
आँखें पंकज की देखीं
रवि ने मनुहार भरी सी।

दीपकमय कर डाला जब
जलकर पतङ्ग ने जीवन,
सीखा बालक मेघों ने
नभ के आंगन में रोदन;

उजियारी अवगुण्ठन से
विधु ने रजनी को देखा,
तब से मैं ढूँढ रही हूँ
उनके चरणों की रेखा।

मैं फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते,
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ में उड़ जाते।

वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूँ,
यह कौन बता जायेगा
किसमें पुतली को देखूँ?

मेरी पलकों पर रातें
बरसाकर मोती सारे,
कहतीं 'क्या देख रहे हैं
अविराम तुम्हारे तारे' ?

तम ने इन पर अंजन से
बुन बुन कर चादर तानी,
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी!

इन पर सौरभ की सांसें
लुट लुट जातीं दीवानी,
यह पानी में बैठी है
बन स्वप्न लोक की रानी।

कितनी बीतीं पतझारें
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीड़ा को
कोई पर ढूंढ न पाये!

झिप झिप आँखें कहती हैं
यह कैसी है अनहोनी ?
हम और नहीं खेलेंगी
उनसे यह आँखमिचौनी ।

अपने जर्जर अञ्चल में
भरकर सपनों की माया,
इन थके हुए प्राणों पर
छाई विस्मृति की छाया !

+ + +

मेरे जीवन की जाग्रति !
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें
तुम चिरनिद्रा बन जाना !

१६२६ अप्रेल

विस्मृति

जहां है निद्रामग्न वसन्त
तुम्हीं हो वह सूखा उद्यान,
तुम्हीं हो नीरवता का राज्य
जहां खोया प्राणों ने गान;

निराली सी आंसू की बूंद
छिपा जिसमें असीम अवसाद,
हलाहल या मदिरा का घूंट
डुबा जिसने डाला उन्माद!

जहां बन्दी मुरझाया फूल
कली की हो ऐसी मुस्कान,
ओसकन का छोटा आकार
छिपा जो लेता है तूफान;

जहां रोता है मौन अतीत
सखो! तुम हो ऐसी झङ्कार,
जहां बनती अलोक समाधि
तुम्हीं हो ऐसा अन्धाकार।

जहां मानस के रत्न विलीन
तुम्ही हो ऐसा पारावार,
अपरचिति हो जाता है मीत
तुम्हीं हो ऐसा अञ्जन सार।

मिटा देता आंसू के दाग़
तुम्हारा यह सोने सा रङ्ग,
डुबा देती बीता संसार
तुम्हारी यह निस्तब्ध तरङ्ग।

भस्म जिसमें हो जाता काल
तुम्ही वह प्राणों का सन्यास,
लेखनी हो ऐसी विपरीत
मिटा जो जाती है इतिहास ;

साधनाओं का दे उपहार
तुम्हे पाया है मैंने अन्त,
लुटा अपना सीमित ऐश्वर्य
मिला है यह वैराग्य अनन्त।

\+ + +

भुला डालो जीवन की साध
मिटा डालो बीते का लेश,
एक रहने देना यह ध्यान
क्षणिक है यह मेरा परदेश !

१९२७ फरवरी

अनन्त की ओर

गरजता सागर तम है घोर
घटा घिर आई सूना तीर,
अंधेरी सी रजनी में पार
बुलाते हो कैसे बेपीर ?

नहीं है तरिणी कर्णाधार
अपरिचित है वह तेरा देश,
साथ है मेरे निर्मम देव !
एक बस तेरा ही संदेश।

+ + +

हाथ में लेकर जर्जर बीन
इन्हीं बिखरे तारों को जोर,
लिए कैसे पीड़ा का भार
देव आऊँ अनन्त की ओर ?

१८२८ मई

स्मारक

झूमते से सौरभ के साथ
लिए मिटते स्वप्नो का हार,
मधुर जो सोने का संगीत
जा रहा है जीवन के पार ;
तुम्ही अपने प्राणो मे मौन
बांध लेते उसकी झङ्कार।

काल की लहरों में अविराम
बुलबुले होते अन्तर्धान,
हाय उनका छोटा ऐश्वर्य्य
डूबता लेकर प्यासे प्राण ;
समाहित हो जाती वह याद
हृदय में तेरे हे पाषाण !

पिघलती आँखों के संदेश
आंसुओं के वे पारावार,
भग्न आशाओं के अवशेष
जली अभिलाषाओं के क्षार ;
मिलाकर उच्छ्वासों की धूलि
रंगाई है तूने तस्वीर !

गूँथ बिखरे सूखे अनुराग
बीन करके प्राणों के दान,
मिले रज में सपनों को ढूँढ
खोज कर वे भूले अह्वान ;
अनोखे से माली निर्जीव
बनाई है आंसू माल !

स्मारक

मिटा जिनको जाता है काल
अमिट करते हो उनकी याद,
डुबा देता जिसको तूफ़ान
अमर कर देते हो वह साध;
मूक जो हो जाती है चाह
तुम्हीं उसका देते संदेश।

राख में सोने का सम्राज्य
शून्य मे रखते हो संगीत,
धूल से लिखते हो इतिहास
विन्दु मे भरते हो वारीश;
तुम्ही मे रहता मूक वसन्त
अरे सूखे फूलों के हास!

१८२७ नवम्बर

मोल

झिलमिल तारों की पलकों मे
स्वप्निल मुस्कानों को ढाल,
मधुर वेदनाओं से भर के
मेघों के छायामय थाल ;

रंग डाले अपनी लाली में
गूँथ नये ओसो के हार,
विजन विपिन मे आज बावली
बिखराती हो क्यों शृंगार ?

मोल

फूलों के उच्छ्वास बिछाकर
फैला फैला स्वर्ण पराग,
विस्मृति सी तुम मादकता सी
गाती हो मदिरा सा राग ;

जीवन का मधु बेच रही हो
मतवाली आँखों में घोल
क्या लोगी ? क्या कहा सजनि
'इसका दुखिया आंसू है मोल' !

१९२९ जनवरी

दी

मूक करके मानस का ताप
सुलाकर वह सारा उन्माद,
जलाना प्राणों को चुपचाप
छिपाये रोता अन्तर्नाद;
कहां सीखी यह अद्भुत प्रीति?
मुग्ध हैं मेरे छोटे दीप!

चुराया अन्तस्तल मे भेद
नही तुमको वाणी की चाह,
भस्म होते जाते हैं प्राण
नही मुखपर आती है आह;
मौन में सोता है सङ्गीत—
लजीले मेरे छोटे दीप!

क्षार होता जाता है गात
वेदनाओं का होता अन्त,
किन्तु करते रहते हो मौन
प्रतीक्षा का आलोकित पन्थ,
सिखादो ना नेही की रीति—
अनोखे मेरे नेही दीप !
पड़ी है पीड़ा संज्ञाहीन
साधना में डूबा उद्गार,
ज्वाल मे बैठा हो निस्तब्ध
स्वर्ण बनता जाता है प्यार;
चिता है तेरी प्यारी मीत—
वियोगी मेरे बुझते दीप !
अनोखे से नेही के त्याग।
निराले पीड़ा के संसार।
कहां होते हो अन्तर्ध्यान
लुटा अपना सोने सा प्यार ?
कभी आयेगा ध्यान अतीत—
तुम्हें क्या निर्वाणोन्मुख दीप ?

१९२७ नवम्बर

वरदान

तरल आंसू की लड़ियां गूँथ
इन्हीं ने काटी काली रात,
निराशा का सूना निर्माल्य
चढ़ाकर दे । फीका प्रात।

इन्हीं पलकों ने कंटक हीन
किया था वह मारग बेपीर,
जहां से छूकर तेरे अङ्ग
कभी आता था मंद समीर !

सजग लखती थी तेरी राह
सुलाकर प्राणो में अवसाद,
पलक प्यालो से पी पी देव !
मधुर आसव सी तेरी याद ।

अशन जल का जल ही परिधान
रचा था बूँदो मे संसार,
इन्ही नीले तारों मे मुग्ध
साधना सोती थी साकार ।

आज आये हो हे करुणेश !
इन्हे जो तुम देने वरदान,
गलाकर मेरे सारे अङ्ग
करो दो आँखों का निर्माण !

१६२८ दिसम्बर

स्मृति

विस्मृति तिमिर मे दीप हो
भवितव्य का उपहार हो ;
बीते हुए का स्वप्न हो
मानव हृदय का सार हो ।

तुम सान्त्वना हो दैव की
तुम भाग्य का बरदान हो ;
टूटी हुई झंकार हो
गतकाल की मुस्कान हो ।

उस लोक का संदेश हो
इस लोक का इतिहास हो ;
भूले हुए का चित्र हो
सोई व्यथा का हास हो ।

स्मृति

अस्थिर चपल संसार मे
तुम हो प्रदर्शक सङ्गिनी ;
निस्सार मानस कोष मे
हो मञ्जु हीरक की कनी ।

दुर्दैव ने उर पर हमारे
चित्र जो अङ्कित किए,
देकर सजीला रङ्ग तुमने
सर्वदा रञ्जित किए ;

तुम हो सुधाधारा सदा
सूखे हुए अनुराग को ;
तुम जन्म देती हो सखी !
आसक्ति को वैराग्य को ।

तेरे विना संसार मे
मानव हृदय स्मशान है ;
तेरे बिना हे सङ्गिनी !
अनुराग का क्या मान है ?

१९२६ मई

याद

निठुर होकर डालेगा पीस
  इसे अब सूनेपन का भार,
    गला देगा पलकों में मूंद
      इसे इन प्राणों का उद्गार;

खींच लेगा असीम के पार
  इसे छलिया सपनों का हास,
    बिखरते उच्छ्वासों के साथ
      इसे बिखरा देगा नैराश्य।

सुनहरी आशाओं का छोर
बुलायेगा इसको अज्ञात,
किसी विस्मृत वीणा का राग
बना देगा इसको उद्भ्रान्त ।

\+ \+ \+

छिपेगी प्राणों में बन प्यास
घुलेगी आँखों में हो राग,
कहां फिर ले जाऊँ हे देव !
तुम्हारे उपहारों की याद ?

१९२९ जुलाई

नीरव भाषण

गिरा जब हो जाती है मूक
देख भावों का पारावार,
तोलते हैं जब बेसुध प्राण
शून्य से करुणकथा का भार;
मौन बन जाता आकर्षण
वहीं मिलता नीरव भाषण।

जहां बनती पतझार वसन्त
जहां जागृति बनती उन्माद,
जहां मदिरा देती चैतन्य
भूलना बनता मीठी याद;
जहां मानस का मुग्ध मिलन
वहीं मिलता नीरव भाषण।

जहां विष देता है अमरत्व
जहां पीड़ा है प्यारी मीत,
अश्रु हैं नयनों का श्रृंगार
जहां ज्वाला बनती नवनीत;
मृत्यु बन जाती नवजीवन
वहीं रहता नीरव भाषण।

नहीं जिसमें अनन्त विच्छेद
बुझा पाता जीवन की प्यास,
करुण नयनों का संचित मौन
सुनाता कुछ अतीत की बात;
प्रतीक्षा बन जाती अंजन
वहीं मिलता नीरव भाषण।

पहन कर जब आंसू के हार
मुस्करातीं वे पुतली श्याम,
प्राण में तन्मयता का हास
मांगता है पीड़ा अविराम;
वेदना बनती संजीवन
वहीं मिलता नीरव भाषण।

जहां मिलता पङ्कज का प्यार
जहां नभ मे रहता आराध्य,
ढाल देना प्राणों मे प्राण
जहां होती जीवन की साध;
मौन बन जाता आवाहन
वहीं रहता नीरव भाषण।

जहां है भावो का विनिमय
जहां इच्छाओं का संयोग,
जहां सपनों में है अस्तित्व
कामनाओं में रहता योग;
महानिद्रा बनता जीवन
वहीं मिलता नीरव भाषण।

जहां आशा बनती नैराश्य
राग बन जाता है उच्छ्‌वास,
मधुर वीणा है अन्तर्नाद
तिमिर मे मिलता दिव्य प्रकाश ;
हास बन जाता है रोदन
वही मिलता नीरव भाषण ।

१६२६

अनोखी भूल

जिन चरणों पर देव लुटाते—
थे अपने अमरों के लोक,
नखचन्द्रों की कान्ति लजाती
थी नक्षत्रों के आलोक;

रवि शशि जिन पर चढ़ा रहे थे
अपनी आभा अपना राज,
जिन चरणों पर लोट रहे थे
सारे सुख सुषमा के साज

जिनकी रज धो धो जाता था
मेघों का मोती सा नीर,
जिनकी छवि अंकित कर लेता
नभ अपना अन्तस्तल चीर;

मै भी भर झीने जीवन मे
इच्छाओं के रुदन अपार,
जला वेदनाओं के दीपक
आई उस मन्दिर के द्वार।

क्या देता मेरा सूनापन
उनके चरणों को उपहार ?
बेसुध सी मै धर आई
उन पर अपने जीवन की हार !

\+ + +

मधुमाते हो विहंस रहे थे
जो नन्दन कानन के फूल,
हीरक बन कर चमक गई
उनके अञ्चल में मेरी भूल !

१६२६ मई

आँसू की माला

उच्छ्वासो की छाया में
पीड़ा के आलिङ्गन मे,
निश्वासो के रोदन मे
इच्छाओं के चुम्बन में;

सूने मानस मन्दिर मे
सपनों की मुग्ध हँसी में;
आशा के आवाहन मे
बीते की चित्रपटी में।

उन थकी हुई सोती सी
ज्योतिष्ना की पलको मे,
बिखरी उलझी हिलती सी
मलयानिल की अलको में;

रजनी के अभिसारों में
नक्षत्रों के पहरों मे,
ऊषा के उपहासो में
मुस्काती सी लहरो में।

जो बिखर पड़े निर्जन मे
निर्भर सपनो के मोती,
मैं ढूँढ़ रही थी लेकर
धुंधली जीवन की ज्योती ;

उस सूने पथ मे अपने
पैरो की चाप छिपाये,
मेरे नीरव मानस मे
वे धीरे धीरे आये।

मेरी मदिरा मधुवाली
आकर सारी ढुलका दी,
हँसकर पीड़ा से भर दी
छोटी जीवन की प्याली;

मेरी बिखरी वीणा के
एकत्रित कर तारों को,
टूटे सुख के सपने दे
अब कहते हैं गाने को।

यह मुरझाये फूलों का
फीका सा मुस्काना है,
यह सोती सी पीड़ा को
सपनों से ठुकराना है;

गोधूली के ओठों पर
किरणों का बिखराना है,
यह सूखी पंखड़ियों में
मारुत का इठलाना है।

\+ + +

इस मीठी सी पीड़ा मे
डूबा जीवन का प्याला,
लिपटी सी उतराती है
केवल आँसू की माला !

१६२७ नवम्बर

फूल

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान,
आंसुवों में सहमे अभिराम
तारकों से हे मूक अजान!
सीखकर मुस्काने की बान
कहां आये हो कोमल प्राण ?

स्निग्ध रजनी से लेकर हास
रूप से भर कर सारे अङ्ग,
नये पल्लव का घूंघट डाल
अछूता ले अपना मकरन्द,
ढूँढ़ पाया कैसे यह देश ?
स्वर्ग के हे मोहक सन्देश !

रजत् किरणों से नैन पखार
अनोखा ले सौरभ का भार,
छलकता लेकर मधु का कोष,
चले आये एकाकी पार;
कहो क्या आये मारग भूल ?
मञ्जु छोटे मुस्काते फूल !

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद,
देख तारों के बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद ?
हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोही की बाट ?

चांदनी का शृंगार समेट
अधखुली आँखो की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ?
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार ?

कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हँसो पहनो कांटो के हार
मधुर भोलेपन के संसार !

१९२७ सितम्बर

खोज

प्रथम प्रणय की सुषमा सा
यह कलियो की चितवन मे कौन ?
कहता है 'मै ने सीखा उनकी—
आँखो से सस्मित मौन'।

घूंघट पट से झांक सुनाते
ऊषा के आरक्त कपोल,
'जिसकी चाह तुम्हे है उसने
छिड़की मुझ पर लाली घोल'।

कहते हैं नक्षत्र 'पड़ी हम पर
उस माया की झाईं';
कह जाते वे मेघ 'हमी उसकी—
करुणा की परछाईं'।

वे मन्थर सी लोल हिलोर
फैला अपने अञ्चल छोर,
कह जातीं 'उस पार बुलाता-
है हमको तेरा चितचोर'।

यह कैसी छलना निर्मम
कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार ?
तुम मन में हो छिपे मुझे
भटकाता है सारा संसार !

१९२८ मई

ो तु आ जाते एक बार

कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद प ार।

हँस उठते पल में आर्द्र नैन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसन्त
लुट जाता चिर संचित विराग;
आँ ें देतीं सर्वस्व वार।

१९२९ नवम्बर

परिचय

जिसमें नहीं सुवास नहीं जो
करता सौरभ का व्यापार,
नही देख पाता जिसकी
मुस्कानो को निष्ठुर संसार ;

जिसके आँसू नही मांगते
मधुपो से करुणा की भीख,
मदिरा का व्यवसाय नहीं
जिसके प्राणो ने पाया सीख

मोती बरसे नहीं न जिसको
छू पाया उन्मत्त बयार,
देखी जिसने हाट न जिस पर
ढुल जाता माली का प्यार;

चढ़ा न देवों के चरणों पर
गूँथा गया न जिसका हार,
जिसका जीवन बना न अबतक
उन्मादों का स्वप्नागार।

निर्जन वन के किसी अंधेरे
कोने में छिपकर चुपचाप,
स्वप्नलोक की मधुर कहानी
कहता सुनता अपने आप।

किसी अपरिचित डाली से
गिरकर जो निरस जंगली फूल,
फिर पथ में बिछकर आँखों में
चुपके से भर लेता धूल।

× × ×

उसी सुमन सा पल भर हंसकर
सूने में हो छिन्न मलीन,
झड़ जाने दो जीवन-माली !
मुझको रहकर परिचय हीन !

१६२६ मई

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

वीर सतसई

रचयिता श्री वियोगी हरि। बाहु फड़काने वाले वीर रस के ७०० दोहों का एक उत्कृष्ट मौलिक ग्रथ। हिन्दी मे शृङ्गार और नीति विषयक सतसइयाँ तो थी परन्तु वीर रस की आज एक भी नही थी, इसका अभाव इस वीर सतसई ने पूरी की है। लेखक ने बड़ी ही सजीव भाषा मे भारत के भूत और वर्तमान की दशा का खाका खींचा है। जहाँ आप भूत पर गर्व करेंगे वहाँ ही वर्तमान पर आँसू बहाने पड़ेगे। अपने देश का इस तरह सुन्दर चित्र खंकित करना श्री वियोगी हरि जी ही ऐसे विद्वानों का काम है। पिछले वर्ष इसी पुस्तक पर अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलत ने १२००) श्रीमंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया था। पुस्तक की छपाई, काग़ज़ बहुत ही उत्तम है। मूल्य भी केवल १॥) ही रक्खा है। प्रथम संस्करण की थोड़ी सी प्रतियाँ और रह गई है। शीघ्रता कीजिये अन्यथा दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।



सूरसंग्रह

संग्रहकर्त्ता लाला भगवानदीन। इस संग्रह में केवल १०० चुने हुये पद रक्खे गये है। जिनमें से ३९ पद विनय के, ९२ पद